International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(3): 159-161

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(3): 159-161
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 15-03-2018
Accepted: 16-04-2018

देवदत्त कुमार
शोधार्थी, संस्कृत विभाग, इं.क.सं.वि. वि.खैरागढ़, छत्तीसगढ़, भारत

Correspondence
देवदत्त कुमार
शोधार्थी, संस्कृत विभाग, इं.क.सं.वि. वि.खैरागढ़, छत्तीसगढ़, भारत

अग्निपुराण में वास्तु कला–शिक्षा एक वैज्ञानिक दृश्टिकोण

देवदत्त कुमार

यहाँ वास्तु कला–शिक्षा वैज्ञानिक दृश्टिकोण का संकेत दृष्टिगत होता है। जब हम भवन इत्यादि का निर्माण करते हैं तो उस समय भी माप तोल करके ही निर्माण, किया जाता है। किस जगह किस कमरे का निर्माण करना है, किस दिशा में करना है। उसकी लम्बाई चौड़ाई क्या होगी। यह सब वास्तु कला में ही किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है भवन निर्माण से पूर्व जो नींव की योजना की जाती है। उसका संकेत यहाँ प्राप्त होता है। नींव के लिए यहाँ योनि शब्द का प्रयोग किया गया है। हवन कुण्ड के निर्माण के आधार पर ही सम्भवतः वास्तुकारों को वर्गाकार आकृति के कक्ष निर्माण की शिक्षा प्राप्त हुई होगी। इसी वैज्ञानिकता के कारण ही अभियन्ता आज भी इसका पालन करते हैं।

मन्दिर निर्माण के पूर्व भूमि–शोधन आवष्यक है। इसके अन्तर्गत भूमि पर अग्नि की स्थापना की जानी चाहिये। प्रथम भूमि का खनन, धागे से 24 अङ्गुल नापकर भूमि पर गड्ढा खोदा जाता है , उसके चारों दिशाओं में मेखलाकार वलय दो अङ्गुल जमीन छोडकर मेखला का निर्माण किया जाता है। ये मेखलायें सत्व रज और तमस् नामक तीन गुणों से युक्त होती हैं। मेखला की चौडाई 8 , 2 और 4 अङ्गुल होती है। वास्तु की विशालता के आधार पर गडढे की लम्बार्द चौडाई निर्धारित होती है। इस विधि को अग्निकार्य कहा गया है। वर्तुलाकार कुण्ड निर्माण की वैज्ञानिक विधि विस्तार से बताई गई हैं ,जो वास्तु शास्त्र के सिद्धान्तों को क्रियान्वित करती है। अन्त में पुराणकार का कथन है कि उपर्युक्त कुण्ड निर्माण विधि तथा समस्त प्रमाणों की शिक्षा सम्यक् रीति से प्रदान करे। (गुरुः संषिक्षयेच्छिश्यांस्तैः पूज्यो नामभिर्हरिः। 24.56,पृश्ठ 48) अग्निपुराणम्–

अग्निकार्यं प्रवक्ष्यामि येन स्यात्सर्वकामभाक्।
चतुरभ्यधिकं विंशमङ्गुलं चतुरस्रकम्।।1।।
सूत्रेण सूत्रयित्वा तु क्षेत्रं तावत खनेत्समम्।
खातस्य मेखलाः कार्या त्यक्त्वा चैवाङ्गुल द्वयम्।।2।।
सत्त्वादिसत्राः पूर्वास्या द्वादशाङ्लमुच्छ्रिताः।
अष्टाङगुला द्वयङ्गुलाथ चतुरङ्गुलविस्तृता।।3।।
योनिर्दशाङ्गगला रम्या षट्चतु र्द्वयङ्गुलोच्छ्रिता।
क्रमान्निम्ना तु कर्तव्या पश्चिमा शाव्यवस्थिता।।4।।
अश्वत्थपत्रदृशी किञ्चित्कुण्डे निवेशिता।
तुर्याङ्गलायतं नालं पञ्चदशाङ्गायतम्।।5।।

प्रस्तुत प्रमाण के आधार पर मन्दिर निर्माण कला का संकेत प्राप्त हुआ है, वराह आदि की मूर्ति की चर्चा होने से मूर्ति कला भी इङ्गित हो रही है। इस प्राचीन मन्दिर निर्माण कला के आधार पर वर्तमान काल में मन्दिर निर्माताओं को शिक्षा का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

पुराण काल के भवनों की रचना किस प्रकार की जाती थी ? कौन कौन सी सुविधओं का ध्यान रखा जाता था ,इन विशयों का तथ्यपरक संकेत ससन्द्रर्भ प्रस्तुत किया जा रहा है–

प्रासादं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वसाधारणं श्रृणु।
चतुरस्रीकृतं क्षेत्रं भजेत्षोऽशधाबुधः।।1।।
मध्ये तस्य चतुर्भिस्तु कुर्यादायसमन्वितम्।
द्वादशेव तु भागांश्च भित्त्यर्थं परिकल्पयेत्।।2।।
जङ्घोच्छ्रायस्तु कर्तव्यश्चतुर्भागेण चायतः।
जङ्धाया द्विगुणोच्छ्रायो मञ्जर्याः कल्पयेद् बुद्धः।।3।।

तुर्यभागेन मत्र्जर्याः कार्यः सम्यक्प्रदक्षिणः।
तनमार्ग निर्गमः कार्य उभयोः पार्श्वयोः समः।।4।।
शिखरेण समं कार्यमग्रे जगति विस्तरम्।
द्विगुणेनापि कर्तव्यं यथा शोभानुरूपतः।।5।।
विस्तारान्मण्डपस्याग्रे गर्भसूत्र द्वयेन तु।
दैर्ध्यात्यादादिकं कुर्यान्मध्यस्तम्भैर्विभूषितम्।।6।।
प्रासादगर्भमानं वा कुर्वीतमुख मण्डपम्।
एकाशीति पर्देषास्तु पश्चान्मण्डपमारभेत्।।7।।
शुकान्प्राग्द्वार विन्यासे पादान्तः स्थान्यजेत् सुरान्।
तथा प्रकारविन्यासे यजेद् द्वात्रिंशदन्तगान्।।8।।
42/1–8 अग्नि पुराण पेज नं. 90

उपर्युक्त सन्दर्भ प्रासाद निर्माण कला से सम्बन्धित हैं ,जो निर्माताओं के लिये उपादेय एवं अनुकरणीय हैं। गुरुस्थानीय हयग्रीव उक्त निर्देशों द्वारा मन्दिर निर्माण कला की शिक्षा दे रहे हैं।

भवन चतुरस्र होना चाहिये। कक्ष के 16 भागों में से भित्तियों के लिये 12 भाग छोडना चाहिये। कक्ष में मँजरी (शिखर)जँघा से दोगुना ऊँचा हो, मध्य में गर्भगृह हो। मध्य भाग में स्तम्भ हो। द्वार के दोनों ओर समान स्थान छोडकर निर्गम मार्ग बनाया जाये। प्रासाद के गर्भ का विस्तार जगमोहन के अनुपात में होना चाहिये। शुकों की ,देवताओं की और चहारदीवारी पर 32 अन्तगों का अंकन कर उनकी पूजा करनी चाहिये। वर्तमान में भवन निर्माण के समय द्वार पर विविध आकृतियों का चित्रण करने की परमपरा है।

वास्तुकला के सम्बन्ध में पुराण कार अत्यन्त स्पश्ट एवं विस्तृत व्याख्या करते हैं। सर्वप्रथम चारों वर्णों के निवास योग्य भूमि के विशय में कहते हैं कि ब्राह्मण , क्षत्रिय , वेष्य और शूद्रों के कल्याण की दृश्टि से क्रमशः ष्वेत, रक्त, पीत और कृश्ण वर्ण की भूमि का चयन होना चाहिये। ऐसी भूमि में क्रमशः घृत, रक्त, अन्न और मद्य का सुगन्ध होता है। भूमि पर विभिन्न वनस्पतियों की उर्वरा शक्तियाँ वास करती हैं। वास्तुमण्डल के चार कोणों में अर्यमा, विवस्वान, मित्र आदि देवताओं की स्थपना की जाती है अर्यमा गृहस्वामी का प्रतीक होता है। समस्त वास्तुदेवताओं का पूजन करने के बाद शिला एवं इश्टिकाओं का विन्यास करना चाहिये। वैदिक मन्त्रों से देवी का आह्वान करते हुए अभीश्ट सिद्धि और पूर्णकाम होने की प्रार्थना की जाती है। गृह की प्रतिश्ठा करते समय गृहस्वामी, नगर स्वामी और देश स्वामी का भी श्रद्धा से स्मरण करते हुए मंगल कामना की जाती है। भवन के चतुर्दिकृ विविध फल पुश्पों की समृद्धि की कामना करते हुए प्रकृति के विभिन्न उपादानों से जैसे वर्शा ,आतप, शीत इत्यादि से श्रेयस् की प्राप्ति हेतु प्रार्थना की जाती है। पुराणों के ये समस्त निर्देश व सन्दर्भ आज के वास्तु विज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। अधोलिखित ष्लोकों में ये सन्दर्भ द्रश्टव्य हैं।

घृतरक्तान्नमद्यानां गन्धाढया वसतश्च भूः।
मधुरा च कषया च अम्लाद्युपरसा क्रमात्।।2।।
कुरौः शरेस्तथाकाशेर्दूर्वाभिर्या च संश्रिता।
प्राच्र्य विप्रांश्च निःशल्यां खात पूर्वन्तु कल्पयेत।।3।।
च तुष्षष्टिपदं कृत्वा मध्ये ब्रह्मा चतुष्पदः।
प्राक्तेषां वै गृहस्वामी कथितस्तु तथार्यमा।।4।।
दक्षिणेन विवस्वांश्च मित्रः पश्चिमतस्तथा।
उद्ङ्महीधरश्चेव आपवत्सौ च वह्निगे।।5।।
सावित्रश्चेव सविता जयेन्द्रो नैर्ऋतेऽम्बुधौ।
रूद्रव्याधी च वायव्ये पूर्वादो कोंणगाद् वहिः।।6।।
महेन्द्रश्च रविः सत्योभृशः पूर्वेऽथ दक्षिणे।
सौम्ये भल्लाटसोमौ च अदितिर्धन दस्तथा।।7।।
नागः कर ग्रहश्चेव अष्टौ दिशि दिशिस्मृताः।
आद्यन्तौ तु तयोर्देवौ प्रोक्तावत्र गृहेश्वरौ।।9।।
पर्जन्यः प्रथयो देवो द्वितीयश्च करग्रहः।
महेन्द्ररविसव्याश्च भृशोऽथगगनं तथा।।10।।

भवन के चारों दिशाओं में भूमि के प्रकार और विशेषतायें बताई हैं। मिटटी, कशाय, अम्ल, दूर्वाङ्कुरों युक्त विप्रों की पूजा अर्चा के बाद, गृहस्वामी का समस्त दिशाओं के अधिपति, सभी देवता, उनके विराजित होने के स्थान तथा उनके कार्यों का स्मरण करते हुए आठों दिशाओं में स्थापना की जाती है।

पवनः पूर्वतश्चेव अन्तरीक्षधनेश्वरौ।
आग्नेये चाथ नैर्ऋत्ये मृगसुग्रीवकौ सुरौ।।11।।
रोगो मुख्यश्च वायव्ये दक्षिणे पुष्पवित्तदौ।
गृहक्षतो यमभृशौ गन्धर्वो नागपैतृकः।।12।।
आप्ये दौवारिकसुग्रीवौ पुष्पदन्तोऽसुरो जलम्।
यक्ष्मा रोगश्च शोषश्च उत्तरे नागराजकः।।13।।
मुख्यो भल्लाट शशिनौ अदितिश्च कुवेरकः।
नागोहुताशः श्रेष्ठो वै शक्र सूर्य्यौ च पूर्वतः।।14।।
दक्षे गृहक्षतः पुष्प आप्ये सुग्रीव उत्तमः।
पुष्पदन्तो ह्मदग् द्वारि भल्लाटः पुष्पदन्तकः।।15।।
शिलेष्टकादि विन्यासं मन्त्रैः प्रार्च्य सुराश्चरेत।
नन्दे! नन्दय वासिष्ठे! वसुभिः प्रजया सह।।16।।
जये! भार्गवदायादे! प्रजानां जयमावह!
पूर्णङ्गिरसदायादे!पूर्णकामं कुरूष्व माम्।।17।।
भद्रे! काश्यपदायादे कुरू भद्रां मतिं मम!
सर्ववीजसमायुक्ते सर्वरत्नौषर्धेवृते।।18।।
रूचिरे! नन्दने! नन्दे वासिष्ठे! रम्यतामिह।
प्रजापतिसुते! देवि! चतुरस्त्रे! महीमये।।19।।
सुभगे! सुब्रते! भद्रे गृहे काश्यपिः रम्यताम्।
पूजिते परमाचाय्यैर्गन्धमाल्यैरलङ्कृते।।20।।

पवन, मृग, सुग्रीव, चन्द्र, सूर्य वसिश्ठ इत्यादि देवताओं और ऋशियों की प्रार्थना करते हुए पृथ्वी माता की अभ्यर्थना की जाती है। इन सभी निसर्ग शक्तियों और तपस्वियों से आत्मकल्याण की कामना करते हुए पुश्प गन्धमाल्यादिकों से इनकी पूजा अर्चा की जाती है। प्रमुख वास्तु देवता के साथ उसके अङ्गभूत दैवी शक्तियों की पूजा का संकेत देते हुए पुराणों ने गृह स्वामी और कुटम्बिजनों की मङ्गल कामना की सम्यक् शिक्षा प्रदान की है–

भवभूतिकरे! देवि! गृहे भार्गवि! रम्यताम्।
अव्यङ्ग्ये! चाक्षते पूर्णे! मुरेङ्गिरसः सुते।।21।।
इष्टके! त्वं प्रयच्छेष्टं प्रतिष्टां कारयाम्यहम्।
देश स्वामिपुरस्वामि गृहस्वामिपरिग्रहे।।22।।
मनुष्यधनहस्त्यश्वपशुवृद्धिकरी भव।
गृहप्रवेशेऽपि तथा शिलान्यासं समाचरेत्।।23।।
उत्तरेण शुभः प्लक्षो वटः प्राक् स्याद् गृहादितः।
उदुम्बरश्च याम्येन पश्चिमेङ्श्वती उत्तमः।।24।।
वामभागे तथोद्यानं कुर्य्याद् वासं गृहे शुभम्।
सायं प्राहस्तु धर्माप्तौशीतकाले दिनान्तरे।।25।।
वर्षारात्रे भुवः शोषे सेक्तव्या रोपितद्रुमाः।
विङङ्गघृतसंयुक्तान सेचयेच्दीतवारिणा।।26।।
फलानाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुर्द्वेस्तिलैर्यवैः
घृतशीतपयः सेकः फलपुष्पाय सर्वदा।।27।।
247/1–27 पेज नं. 512–514
अग्निपुराण

गृहप्रवेश के समय भी इन्हीं औपचारिकताओं का निर्वाह किया जाना चाहिये। धन, जन कुटृम्बिजन का मङ्गल और सम्पत्ति की वृद्धि इत्यादि की कामना करते हुए वास्तु के साथ साथ घर के वाम भाग में एक उद्यान भी निर्मित किया जाना चाहिये। उसके पौधों को जलादि से सींचकर विकसित करना चाहिये , जिससे फल, पुश्पों की समृद्धि होती रहे।

निश्कर्श रुप में कह सकतें हैं अग्निपुराण के आधार पर ही आज भी भवन निर्माण की कला– शिक्षा की वैज्ञानिकता के कारण आज अभियन्ताओं को इसकी शिक्षा प्रदान की जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्निपुराण – चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू.ए. बंगलो रोड़ जवाहर नगर, दिल्ली–110007
2. भारतीय मूर्तिकला – डॉ. रमानाथ मिश्र, दि मैकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड़ नई दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, मद्रास
3. भारतीय वास्तु–कला – डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
4. भारतीय मन्दिर एवं देव–मूर्तियाँ – डॉ. शशिबाला श्रीवास्तव, प्रकाशक–रामानन्द विद्या (द्वितीय खण्ड) भवन जे. 3/227 डी. डी.ए.पलेट्स कालकाजी, दिल्ली–1100019